

हिन्दी भाषा : विकास के विविध सोपान

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव,

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.

शोध सारांश

शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से राष्ट्र-भाषा का सीधा सा अर्थ है राष्ट्र की भाषा और इस तरह राष्ट्र में जितनी भी भाषाएँ प्रयोग की जा सकती हैं, उन सबको राष्ट्रभाषा कहा जा सकता है। किन्तु राष्ट्रभाषा का एक रूढ़ अर्थ है जिसका अभिप्राय है वह भाषा, जिसका प्रयोग सामान्यतः सम्पूर्ण राष्ट्र करे। इस रूप में राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा समानार्थी हो जाते हैं। परन्तु राष्ट्रभाषा और राजभाषा में एक वैधानिक अंतर है। राजभाषा का अर्थ राजकीय अर्थात् राज-काज की भाषा से है। आधुनिक राजनीतिक परिवेश को ध्यान में रखते हुये कहा जा सकता है कि केन्द्र व राज्य सरकारें शासकीय पत्र व्यवहार, राजकाज तथा शासकीय कार्यों के लिये जिस भाषा का प्रयोग करती हैं, उसे राजभाषा कहा जाता है। इस तरह राजभाषा और राष्ट्रभाषा में मूल अंतर संवैधानिक मान्यता का है।

बीज शब्द – हिन्दी भाषा, सम्पर्क भाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा, मातृभाषा, विकास

भाषा का प्रवाह नीर की तरह है जहाँ से होकर भाषा पयस्विनी का प्रवाह होता है। उसकी गन्ध का उसमें समाहित हो जाना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं भाषा पहले बनती है, राष्ट्रवाद में। हिन्दी भाषा के विविध नाम रूप हैं, यथा सम्पर्क भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा। इन विविध नाम रूपों के साथ हिन्दी अलग-अलग संदर्भों में विकसित हुई है। हिन्दी को जब हम सम्पर्क भाषा के रूप में देखते हैं तो हमें उसकी एक सुदीर्घ परम्परा दिखाई पड़ती है। सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भी बोली जाती थी, जब खड़ी बोली के रूप में वह एक सीमित क्षेत्र की भाषा थी। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की स्थापना बहुत प्राचीन नहीं है। वह मूलतः राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की देन है और राजभाषा हिन्दी मुगलकाल से प्रयुक्त होती रही है। वास्तविकता यह है कि सम्पर्क भाषा,

राष्ट्रभाषा और राजभाषा के संदर्भ में हिन्दी के विकास की दिशाएँ अलग-अलग रही हैं, क्योंकि इन विविध रूपों में हिन्दी के सामाजिक संदर्भ भी अलग-अलग हैं। अतः सम्पर्क भाषा, राष्ट्रभाषा या राजभाषा के रूप में हिन्दी को एक करके नहीं देखा जा सकता।

राजभाषा किसी भी देश की संविधान सम्मत भाषा होती है, जिसका प्रयोग मूलतः शासन विधान, न्याय पालिका और कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। इसके विपरीत राष्ट्रभाषा राष्ट्र में व्यवहृत भाषा होती है। यह आवश्यक नहीं कि राष्ट्रभाषा किसी देश की राजभाषा भी हो किन्तु यह आवश्यक है कि राजभाषा उस देश की राष्ट्रभाषा अवश्य हो। वस्तुतः राजभाषा का क्षेत्र कुछ अधिक व्यापक होता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को तीन कालों में बाँटा जा सकता है –

1. अंग्रेजी शासन से पूर्व राजभाषा हिन्दी
2. अंग्रेजी शासन में राजभाषा हिन्दी
3. स्वतन्त्र भारत में राजभाषा हिन्दी

अंग्रेजी शासन से पूर्व अर्थात् मुगल शासन में सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का व्यापक विस्तार पहले से ही था। यद्यपि मुगल शासन में राजकाज में फारसी का प्रयोग होता था किन्तु फारसी का प्रयोग शासन के उच्च स्तर तक सीमित था। निचले स्तर पर चार-पाँच शताब्दी तक शासन का कार्य हिन्दी में होता था। मध्यकालीन शासन-व्यवस्था के प्रसिद्ध जानकार ब्लाखमैन ने सन् 1871 ई. के "कलकत्ता रिव्यू" में लिखा है "माल गुजारी का इकट्ठा करना और जागीरों का प्रबन्ध करना उस समय बिल्कुल हिन्दुओं के हाथों में था। इसलिये निजी तथा सर्वसाधारण के हिसाब-किताब सब हिन्दी में रखे जाते थे। सभी दस्तूर-उल अमलों से इस बात की पुष्टि होती है कि प्रारम्भ से लेकर अकबर के शासनकाल के मध्य तक सभी सरकारी कागजात हिन्दी में रखे जाते थे।"

राजा टोडरमल, जो अकबर के राजस्व मंत्री थे, के समय आदेश सरकारी कागजातों में फारसी में लिखे जाने लगे और हिन्दी नेपथ्य में चली गई। फारसी सरकारी नौकरी से जुड़ गई। फलतः युवकों ने अनिवार्यतः फारसी सीखी और इससे एक मुंशी वर्ग तैयार हुआ, जिसने तीन शताब्दी तक सरकार और फारसी की सेवा की। कारण स्पष्ट है कि हिन्दी का प्रयोग सीमित हो गया।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन की स्थापना के बाद भारत में प्रमुख भाषाओं की स्थिति इस प्रकार थी। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी की भाषा थी एवं फारसी मुगलकाल से ही देश की राजभाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही थी। इसके साथ क्षेत्रीय भाषाएं (इनमें हिन्दी सर्वाधिक लोगों द्वारा व्यापक क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा प्रयुक्त होती थी।)

शुरूआती दौर में कम्पनी शासन ने भाषा नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया। मुगल शासन के पतन के बाद फारसी का महत्व यद्यपि कम हो गया था और उसका प्रचलन भी सीमित होने लगा था किन्तु कम्पनी शासन ने फारसी को राजभाषा बने रहने दिया। साथ ही हिन्दी की लोकप्रियता और सामाजिक दबाव के कारण फारसी के साथ हिन्दी का प्रयोग भी जारी रहने दिया। फलतः कम्पनी के राजकीय आदेशों, सूचनाओं और अन्य सरकारी कागजों में फारसी और हिन्दी दोनों का प्रयोग मान्य हो गया। कम्पनी शासन ने अपने सिक्कों और स्टाम्पों में फारसी के साथ-साथ नागरीलिपि को भी स्थान दिया। सन् 1830 तक हिन्दी का द्वितीय राजभाषा के रूप में प्रयोग होता रहा। यद्यपि फारसी के प्रयोग में हिन्दी की व्यापक लोकप्रियता के कारण अनेक व्यवहारिक कठिनाइयाँ थीं तो भी सन् 1830 तक कम्पनी शासन ने अपनी भाषा नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया। अंग्रेजी में राजकाज करने के लिए तब अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं थी। फ्रेडरिक जॉन और ड्रमन्ड जैसे अंग्रेज अधिकारी भी इस वास्तविकता से अच्छी तरह परिचित थे कि अभी भारतीय जनता पर अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा को लादना अव्यावहारिक होगा।

राजभाषा के रूप में देशी भाषाओं के प्रयोग हेतु कम्पनी शासन ने सन् 1830 में बंगला, गुजराती, मराठी आदि को मान्यता दी। कम्पनी शासन की विज्ञप्ति में यह स्पष्ट कहा गया कि अदालतों की भाषा हिन्दी होगी और लिपि नागरी के स्थान पर फारसी भी हो सकती है। 20 नवम्बर सन् 1831 को एक कानून बना जिससे अदालतों में देशी भाषाओं का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इसके अनुसार बंगाल में बंगला, उड़ीसा में उड़िया, गुजरात में गुजराती तथा असम में असमिया भाषा को कानूनी स्वीकृति मिली। इस कानून के तहत संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश), बिहार तथा माध्य प्रान्त (मध्य प्रदेश) की अदालती भाषा के लिए हिन्दी को मान्यता मिलनी चाहिए थी

किन्तु ऐसा नहीं हो सका। सरकार ने हिन्दी के स्थान पर फारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू को इन प्रान्तों की अदालतों में मान्यता दे दी। कम्पनी ने राजभाषा फारसी को तो हटाया ही, इसके साथ लोक भाषा हिन्दी को भी अपने पूर्व अधिकार से भी वंचित कर दिया। मलिक मोहम्मद के अनुसार “यह विचित्र विडम्बना थी कि जब तक देश में फारसी का प्रचलन रहा तब तक देशी भाषा होने के कारण हिन्दी और उसकी लिपि नागरी-दोनों को स्थान मिला था किन्तु जब फारसी के स्थान पर उर्दू का प्रचलन हुआ तो हिन्दी का बचा-खुचा प्रयोग भी नष्ट हो गया।”

फारसी लिपि में उर्दू का राजभाषा के रूप में प्रवेश कम्पनी शासन की सुविचारित भाषा नीति के तहत हुआ। इसमें फोर्ट विलियम कालेज के गिल क्राइस्ट की भाषा संबन्धी नीति का ही अनुसरण किया गया था। गिलक्राइस्ट उर्दू के पोषक थे। उनकी प्रेरणा से ही उर्दू, फारसी के स्थान पर सरकारी भाषा बनने के योग्य हुई। उन्होंने हिन्दुस्तानी (हिन्दी, अरबी, फारसी का मिश्रित रूप) के रूप में उर्दू का ही प्रचार किया। इससे उर्दू की सरकारी स्थिति दृढ़ हो गई। हिन्दी के विद्वानों के अनुसार “सम्भवतः यह ब्रिटिश शासकों की चाल थी। वे उर्दू को प्रोत्साहन देकर मुसलमानों को प्रसन्न रखना चाहते थे क्योंकि उर्दू उस समय देश के जनसाधारण की भाषा नहीं थी तथापि अंग्रेजों ने उसे सरकारी क्षेत्रों में स्थान देकर हिन्दी के प्रति घोर अन्याय किया था। कचहरियों में उर्दू को बलपूर्वक थोपकर अंग्रेजों ने ऐसा वातावरण तैयार किया जिससे भाषा के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता पनपी।”

मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त तथा बिहार के लोगों की मातृभाषा मुख्यतः हिन्दी थी। इसलिए इन प्रान्तों में उर्दू को अदालती भाषा बनाने के विरुद्ध जनमत तैयार होने लगा। इसका एक व्यावहारिक कारण यह भी था कि अदालती भाषा

नाम के लिए उर्दू थी किन्तु वह फारसी के जटिल शब्दों से बोझिल थी। फारसी से बोझिल इस उर्दू के लिए अंग्रेज विद्वान ग्राँस की टिप्पणी थी “आजकल कचहरी की भाषा बड़ी कष्टदायक है क्योंकि एक तो वह विदेशी है, दूसरे इसे भारतवासियों का अधिकांश भाग नहीं जानता।” अतः यह मांग जोर पकड़ने लगी कि अदालतों की भाषा सरल, सुबोध और नागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी होनी चाहिए। इस मांग ने एक व्यापक आन्दोलन का रूप ले लिया। फलतः सन् 1870 में सरकार ने एक आदेश पत्र जारी किया। इसमें कहा गया कि फारसी बहुल उर्दू नहीं लिखी जाए बल्कि ऐसी भाषा लिखी जाये जो एक कुलीन हिन्दुस्तानी, फारसी से पूर्णतः अनभिज्ञ रहने पर भी बोलता है। इस आदेश का कोई प्रभाव नहीं हुआ और फारसी से बोझिल उर्दू का प्रयोग जारी रहा।

सरकार ने सन् 1873 ई० में एक आदेश दिया कि बिहार की अदालतों और दफ्तरों में सब विज्ञप्तियाँ और घोषणाएँ हिन्दी में जारी की जाएँ परन्तु इस आदेश का क्रियान्वयन ईमानदारी से नहीं हुआ और उर्दू का प्रयोग उसी प्रकार होता रहा। अप्रैल, 1874 ई० में एक परिपत्र द्वारा हिन्दी के नागरी लिपि में प्रयोग का पुनः आग्रह किया गया कि सन् 1873 ई० के आदेश का पालन किया जाए। फिर भी हिन्दी बहिष्कार जारी रहा। सन् 1875 ई० में सरकार ने पुनः एक परिपत्र सम्पूर्ण विभागीय अधिकारियों के पास भेजा किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला। हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए आन्दोलन को बढ़ते देखकर बंगाल के लेफ्टिनेंट गर्वनर सर ऐड्रोल ने राजभाषा नीति पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने सोचा कि सरकारी आदेश का पूर्ण पालन तभी सम्भव हो सकेगा जब वे केवल नागरी लिपि में लिखे जाएँ तथा जनता की ओर से जो कागज अदालतों में प्रेषित किए जाएँ वे भी केवल इसी (नागरी) लिपि में हों। नये शासकीय आदेश में स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि फारसी लिपि में कोई कागज न तो अदालतों से

जारी किया जाए और न जनता से अदालतों में स्वीकार किए जाएं। इसके अतिरिक्त पुलिस अधिकारियों को आदेश दिया गया कि यदि वे जनवरी, सन् 1881 ई० तक नागरी लिखना-पढ़ना नहीं सीखेंगे तो उन्हें हटा दिया जायेगा। उनकी जगह हिन्दी जानने वालों को ले लिया जायेगा। पहले इस आदेश की भी उपेक्षा की गई किन्तु शासन की दृढ़ता को देखकर क्रमशः फारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू का स्थान हिन्दी ने ले लिया। इस प्रकार मध्य प्रान्त की कचहरियों में हिन्दी को स्थान मिला। उधर संयुक्त प्रांत की अदालतों में हिन्दी को मान्यता देने के लिए आन्दोलन चलता रहा। सन् 1854 ई० व सन् 1856 ई० के सरकारी आदेशों से हिन्दी को प्रांत के राजस्व विभाग की अदालतों में स्थान मिल गया था किन्तु यह संतोषजनक स्थिति नहीं कही जा सकती थी।

वार्षिक प्रांतीय भाषा रिपोर्ट में सन् 1873-74 ई० में कहा गया कि प्रांत के 71 प्रतिशत विद्यार्थी हिन्दी माध्यम से पढ़ने के इच्छुक हैं किन्तु सरकार ने इसकी उपेक्षा करते हुए सन् 1877 ई० में एक आदेश निकाला जिसके अनुसार 'सरकारी नौकरियां केवल उनको ही उपलब्ध होंगी जो उर्दू या फारसी भाषा के साथ 'वर्नाकलुर' अथवा 'एंग्लो मिडिल परीक्षा' उत्तीर्ण होंगे। इस आदेश से हिन्दी समर्थकों को आघात पहुँचा। फलतः सन् 1880 ई० तक आते आते हिन्दी आन्दोलन काफी व्यापक हो गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में लेखकों और पत्रकारों ने राजभाषा हिन्दी आन्दोलन को आगे बढ़ाया। सन् 1882 ई० में शिक्षा आयोग के प्रश्न पत्र के उत्तर में भारतेन्दु जी ने लिखा – "सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग होता है। यही ऐसा देश है जहाँ न तो अदालती भाषा शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की।" सन् 1893 ई० में अंग्रेजी सरकार ने भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि अपनाने का प्रश्न खड़ा कर दिया। सन् 1896 ई० में यह बात

तेजी से फैली कि फारसी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि अपनाई जायेगी। इससे हिन्दी और उर्दू समर्थकों को समान रूप से धक्का पहुँचा। हिन्दी समर्थकों ने नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अंग्रेजी में 'नागरी करैक्टर' नामक पुस्तक में भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि की अनुपयुक्तता पर प्रकाश डाला। तब अंग्रेज सरकार को रोमन लिपि के प्रति देशवासियों की विरोध भावना का पता चला। इस विवाद को हल करने के लिए समिति गठित हुई। उसने भी रोमन लिपि के पक्ष में ही अपना निर्णय दिया। नागरी प्रचारिणी सभा ने इसका सक्रिय विरोध किया।

राजभाषा हिन्दी आन्दोलन की बागडोर पंडित मदनमोहन मालवीय के हाथों में आई। आपने 'कोर्ट कैरेक्टर एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ-वेस्टर्न प्रोविन्सेज' पुस्तिका में स्पष्ट किया कि स्वयं विभिन्न अंग्रेज अधिकारियों तथा विशेषज्ञों ने 19 वीं सदी के आरम्भ से ही समय-समय पर यह स्वीकार किया है कि हिन्दी को देश की अदालती भाषा बनने का अधिकार है उन्होंने नागरी लिपि की अत्यंत प्रशंसा करते हुए यह सिफारिश की है कि यदि नागरी लिपि के द्वारा अदालत में काम होगा तो जनता के एक विशाल भाग को सुगमता हो जायेगी। मदन मोहन मालवीय जी ने सन् 1898 ई० में अपने नेतृत्व में 17 सदस्यीय प्रतिनिधि मण्डल के साथ संयुक्त प्रांत के लेफ्टिनेंट गर्वनर जनरल सर एण्टोनी मैकडैनुएल से मिलकर उन्हें एक याचिका प्रस्तुत की। गर्वनर ने स्वीकार किया कि यद्यपि वह अदालतों की भाषा के शीघ्र परिवर्तन के पक्ष में नहीं है फिर भी वे यह मानते हैं कि यदि नागरी लिपि के प्रयोग में छूट दी जाय तो इससे जनता का हित होगा। उन्होंने याचिका पर पूरी जाँच करने और विचार करने का आश्वासन दिया। इधर उर्दू समर्थकों ने भी उर्दू के लिए आवाज उठाई और सरकार के पास अपने प्रतिनिधि मण्डल भेजे। राजभाषा के रूप में हिन्दी-उर्दू का प्रश्न पूर्णतः राजनीतिक बन गया और एक सीमा

तक साम्प्रदायिक भी। सर सैय्यद अहमद जैसे मुस्लिम नेता भी हिन्दी के प्रबल विरोधी बन गये। सरकार का झुकाव पहले से ही उर्दू के लिए था। स्पष्ट है कि समर्थकों को अधिक उग्रता से काम लेना पड़ा। अन्ततः ब्रिटिश सरकार ने प्रशासन के तीन प्रमुख विभागों – राजस्व बोर्ड, हाई कोर्ट के रजिस्ट्रार तथा न्याय-विभाग के कमिश्नर से राजभाषा के संबंध में सहमति माँगी। इन विभागों की सम्मति के आधार पर सरकार ने 18 अप्रैल, सन् 1900 ई० को अपना निर्णय इस प्रकार दिया :

सभी लोग अपनी इच्छानुसार अपनी याचिकाएं अथवा शिकायतें नागरी या फारसी लिपि में प्रयुक्त कर सकते हैं। सभी सम्मन, घोषणाएं तथा इस प्रकार के अन्य पत्र जो अदालतों तथा राजस्व बोर्ड के दफ्तरों से जारी किए जाते हैं अब फारसी तथा नागरी दोनों लिपियों में होंगे। इन कागजों में रिक्त स्थान भी दोनों लिपियों में भरे जा सकेंगे। सभी कार्यालयों में (उन्हें छोड़कर जिनमें सब काम अंग्रेजी में होता है) क्लर्क या अधिकारी पद पर भविष्य में केवल ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति की जायेगी जो फारसी तथा नागरी दोनों भली-भाँति लिख-पढ़ सकते हैं।

उर्दू भाषा प्रेमियों ने इस नयी व्यवस्था का विरोध किया। यद्यपि यह व्यवस्था हिन्दी को पूर्णता राजभाषा का दर्जा नहीं देती थी किन्तु आंशिक रूप से ही सही, अदालतों में हिन्दी को स्थान मिल ही गया। चूँकि लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति के अन्तर्गत अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम बनती जा रही थी, साथ ही शासन के उच्च स्तर पर अंग्रेजी का प्रयोग होने लगा था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक आते-आते अंग्रेजी ने उच्च शिक्षा, प्रशासन, राजनीति सभी क्षेत्रों में अपना स्थान बना लिया था। हिन्दी, उर्दू का प्रयोग राजकाज के निचली अदालतों तक ही सीमित रहा। सन् 1857 ई० के असफल विद्रोह के बाद अंग्रेजी साम्राज्य

के विरुद्ध व्यापक जनमत तैयार करने के लिए एक 'सार्वदेशिक भाषा' की आवश्यकता अनुभव की गई। राष्ट्रीय चेतना से समपृक्त राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को व्यापक समर्थन मिला। यहीं से राष्ट्रभाषा हिन्दी आन्दोलन की शुरुआत हुई। इसका एक अलग इतिहास है। हिन्दी के एक प्रसिद्ध समीक्षक का मानना है कि – "यहाँ केवल इतना संकेत कर देना पर्याप्त होगा कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को किसी प्रकार की कानूनी मान्यता नहीं मिली थी वरन् अपनी व्यापक लोकप्रियता और प्रयोग की सुदीर्घ परम्परा के कारण हिन्दी अहिन्दी सभी क्षेत्रों के राजनेताओं, समाज सुधारकों एवं चिन्तकों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करने का विचार ही सर्वप्रथम अहिन्दी क्षेत्र बंगाल से उत्पन्न हुआ। राष्ट्रभाषा आन्दोलन में महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, काका साहब कालेलकर, लाला लाजपतराय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पुरुषोत्तम दास टण्डन, मदन मोहन मालवीय, सेठ गोविन्ददास जैसे महान व्यक्तियों का समर्थन और सक्रिय सहयोग रहा। साथ ही सामाजिक सुधार आन्दोलन से सम्बद्ध संस्थाओं आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी ने भी राष्ट्र भाषा आन्दोलन में अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाई। हिन्दी प्रचारक संस्थाओं जैसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुजरात विद्यापीठ आदि ने राष्ट्र भाषा हिन्दी आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रभाषा आन्दोलन के कारण राजभाषा के रूप में हिन्दी को एक सशक्त पृष्ठभूमि मिली।

अब प्रश्न यह उठता है कि देश की राजभाषा हिन्दी हो या हिन्दुस्तानी? इस प्रश्न को लेकर राजनेताओं में काफी मतभेद रहा। फारसी के पतन के बाद उर्दू का प्रयोग सीमित हो चला था। इसके विपरीत हिन्दी राष्ट्रभाषा आन्दोलन के कारण सशक्त समर्थन पा चुकी थी। हिन्दुस्तानी गाँधी जी का दिया हुआ नाम था। किन्तु वह आम

बोलचाल की ही भाषा थी। राजकाज के लिये तो हिन्दी ही सर्वथा उपयुक्त थी। संविधान सभा पर हिन्दी को राजभाषा घोषित करने के लिये देश के कोने-कोने से दबाव पड़ने लगा। अन्ततः काफी वाद-विवाद के बाद देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया। इसी प्रकार हिन्दी के अंको के लिये भी मतभेद सामने आये। पुरुषोत्तम दास टण्डन और गोविन्ददास हिन्दी अंकों के प्रबल पक्षधर थे किन्तु पं. नेहरू का झुकाव अन्तर्राष्ट्रीय अंको के प्रति था। अंततः अन्तर्राष्ट्रीय अंको को ही मान लिया गया। यहाँ पर यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत कराने के लिये आधी शताब्दी तक एक आन्दोलन चलता रहा। भारतीय जनमानस में उसे राष्ट्रभाषा की मान्यता भी मिल गई किन्तु भाषाई राजनीति के कारण स्वतंत्र भारत के संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का नहीं 'राजभाषा' का दर्जा मिला।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा हिन्दी के लिये व्यवस्था के निर्देश मिलते हैं। अनुच्छेद 343 ;पद्ध में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को संघ की राजभाषा कहा गया है। साथ ही प्रारम्भ के पन्द्रह वर्षों तक अंग्रेजी के प्रयोग को भी उन सभी शासकीय कार्यों के लिये मान्यता मिल गई जिसमें उसका प्रयोग पहले से होता रहा है। संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार प्रारम्भ से पन्द्रह वर्षों में राष्ट्रपति किसी प्रयोजन के लिये अंग्रेजी के साथ हिन्दी का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेंगे। पन्द्रह वर्ष पश्चात हिन्दी के साथ अंग्रेजी का कितना और किन-किन प्रयोजनों के लिये उपयोग होगा, इसका निश्चय संसद करेगी। अनुच्छेद 344 के अनुसार प्रत्येक पांच वर्ष के पश्चात राष्ट्रपति एक भाषा आयोग की नियुक्ति करेंगे जो हिन्दी के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग करने और अंग्रेजी का प्रयोग घटाने की सिफारिश करेगा।

अनुच्छेद 345, 346 एवं 347 के अनुसार दो राज्यों के बीच अथवा एक राज्य और संघ के बीच विवाद विनिमय के लिये अंग्रेजी तथा हिन्दी और परस्पर समझौते से केवल हिन्दी का प्रयोग किया जा सकेगा। किसी राज्य की विधान सभा विधि द्वारा अपने प्रदेश की भाषा को मान्यता प्रदान कर सकेगी। यदि कोई राज्य अंग्रेजी को विधि द्वारा जारी नहीं रखना चाहता तो उस प्रदेश की भाषा राजभाषा हो जायेगी। उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय की भाषा अंग्रेजी होगी किन्तु राष्ट्रपति या राज्यपाल की पूर्ण सम्मति से हिन्दी अथवा उस राज्य की भाषा का प्रयोग उच्च न्यायालय की कार्यवाही के लिये प्राधिकृत किया जा सकेगा। राजकीय प्रयोजनों में हिन्दी के विकास के लिये अनुच्छेद 351 का विशेष महत्व है। संघ को यह कार्य पन्द्रह वर्षों में कर लेना चाहिये था किन्तु पाँच दशकों से अधिक के बाद भी संघ अपने कर्तव्य को कितना पूरा कर पाया, यह शोध का विषय है।

आज राजभाषा की वर्तमान स्थिति सैद्धान्तिक स्तर पर हिन्दी को महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त करा चुकी है। किन्तु व्यवहारिक स्तर पर अंग्रेजी की ही प्रमुखता है। मुगलकाल में फारसी के साथ हिन्दी द्वितीय स्तर की राजभाषा थी। कमोवेश वही स्थिति अंग्रेजी के साथ हिन्दी की है। अंग्रेजी केवल दक्षिण भाषा भाषियों के विरोध के कारण ही आज भी नहीं बनी है बल्कि इसके कुछ सामाजिक और आर्थिक कारण भी हैं जैसे कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. एस. एफ. कानडे लिखते हैं—“शिक्षा और राजकार्य की भाषा का प्रश्न एक ही है। जब तक अंग्रेजी के साथ प्रतिष्ठा, सत्ता, नौकरी और पैसा जुड़ा रहेगा तब तक लोगों से अपेक्षा करना कि वे अपने बच्चों को अंग्रेजी न पढ़ाये, मूर्खता होगी और जब तक ये अंग्रेजी के मानस पुत्र सत्तारूढ़ रहेंगे, तब तक अंग्रेजी की शिक्षा प्रचारित रहेगी, अनिवार्य भी कर दी जायेगी और अंग्रेजी राजभाषा बने रहने का दावा भी करती रहेगी।”

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी ने अंग्रेजी के इस व्यामोह से पिंड छुड़ाना स्वराज्य का अनिवार्य अंग माना था किन्तु यह इस देश की विडम्बना है कि वह इस व्यामोह से छूटने के बजाय दिन-प्रतिदिन उसमें और जकड़ता जा रहा है। यही हिन्दी की सबसे बड़ी त्रासदी है। राजभाषा हिन्दी के प्रति जनता-जनार्दन की उपेक्षा खासकर हिन्दी भाषी व हिन्दी सीखे लोगों की अपेक्षा भी राजभाषा के कार्यान्वयन में अड़चन है। अकर्मण्यता या हीन भावना से प्रेरित होकर लोग हिन्दी के प्रयोग से कतराते हैं। अंग्रेजी की आबोहवा इतनी जबर्दस्त है कि खुद हिन्दी भाषी-हिन्दी प्रेमी दूसरों के सामने अपना सिक्का जमाने के लिये अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। इसके लिये नवयुग में सिंहनाद-सा शंखनाद करने के लिये अभिनव भारतेन्दुओं को जन्म लेना है। श्रीमद्भागवत गीता में भी है, “यदा-यदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः अभ्युत्थान मधर्मस्यतदात्मानम् सृजाम्यहम्।” निजभाषा उन्नति सभी उन्नतियों का मूल सिद्धान्त घोषित करने वाले कलम के धनी साहित्यकारों की सहायता से इस समस्या का भी समाधान किया जा सकता है। हिन्दी साहित्यकारों के लिये यह अंग्रेजी परस्त संकट एक चुनौती है। इस उम्मीद के साथ कि वे जनधर्म को जगाएंगे और जनभाषा को बचाएंगे।

सन्दर्भ

- तिवारी डॉ० भोलानाथ, राजभाषा हिन्दी-प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार दिल्ली 110006, प्रथम संस्करण-1952
- तिवारी डॉ० भोलानाथ, हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास -ज्ञान भारती 4/14 रूप नगर दिल्ली 110007, संस्करण-1986
- तिवारी डॉ० भोलानाथ, हिन्दी भाषा का अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ-पांडुलिपि प्रकाशन 77/1 ईस्ट आज़ाद नगर, दिल्ली 110051, प्र.स. 1998
- मिश्र विद्यानिवास, हिन्दी और हम -ग्रन्थ अकादमी, 1686, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली 110002, प्र.स. 2001
- मृगेश, डॉ० माणिक, भूमण्डीकरण, निजीकरण व हिन्दी-वाणी, प्रकाशन 21 ए दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, प्र.सं. 2000
- सत्यनारायण डॉ० मोटुरी, समन्वय का सूत्र : हिन्दी-संस्कृति भवन, वाणगंगा, भोपाल-462003
- पाण्डेय अरुण कुमार, अपने ही घर में बेघर हिन्दी, राष्ट्रभाषा फरवरी, 2009, राष्ट्रभाषा, प्रचार समिति, वर्धा
- अनिता विजय ठक्कर, हिन्दी की प्रचार संस्थाएँ स्वरूप और इतिहास, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, 2009
- तिवारी अर्जुन, हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
- तिवारी भोलानाथ, हिन्दी भाषा का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004
- शर्मा देवेन्द्र नाथ, राष्ट्रभाषा हिन्दी : समस्याएँ और समाधान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987
- गाँधी महात्मा, राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1992
- शर्मा डॉ० रामकिशोर, हिन्दी साहित्य का इतिहास-इलाहाबाद-1992